ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-10* November- 2017
Innovation The Research Concept

भूमंडलीकरण और बदलते गाँव का परिदृश्य

सारांश

आजादी के सत्तर साल बाद भी भारतीय किसानों की हालत में कुछ भी सुधार नहीं होता दिख रहा है। आजकल किसान किसानी से भागते नजर आ रहे हैं। प्रेमचंद के समय किसान मजदूर बनते दिखे,आजादी के बाद किसान आत्महन्ता होते दिख रहे हैं। भारतवर्ष जो गाँवों का देश कहा जाता है वह अब संस्कृति, लोकाचार, शिक्षा, भाई–चारा, संबंध आदि की दृष्टि से बहुत हद तक व्यवहारिक या व्यापारिक बनता दिख रहा है। बाजादवाद, उदारीकरण, आधुनिकतावाद, उत्तर आधुनिकता आदि तमाम उपमाएँ किस कदर ग्रामीण चित्रों को प्रभावित किया है। इसे इस पत्र में देख सकते हैं। गाँव से शहर की ओर आये युवकों की विचार भी किस तरह बदले हैं यह भी देखने योग्य है।

मुख्य शब्द : बेकारी,अशिक्षा,फसल का उचित मूल्य न मिलना, अजनबीपन,समूह में भी अकेला।

रणजीत कुमार सिन्हा
व्याख्याता,
हिंदी विभाग,
खड़गपुर कॉलेज,
खड़गपुर ,पश्चिम मिदनापुर

प्रस्तावना

भारतवर्ष गाँवों का देश है, करीब सात लाख गाँव है। गाँव हमारे देश की धरोहर है। भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार यहाँ के गाँव तथा खेतीबाड़ी है। भारतीय संस्कृति को ग्रामीण संस्कृति कहा जाता है। महात्मा गांधी ने कहा था कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। तकनीकी और प्रौद्योगिक विकास के बावजूद भारत की अर्थव्यस्था का आधार कृषि है, और हम इस अवधारणा से मुक्ति नहीं पा सकते हैं। शिक्षा तथा विज्ञान के प्रचार–प्रसार ने गाँव के लोगों को शहर की ओर मोड़ दिया। लोग कमाने और नौकरी की चाहत में शहर की ओर बढ़ने लगे। आजाद भारत में किसानों की जमीन हथियाने की नई योजनाएं सरकार बनाने में जुटी है। पूँजीपति और साहूकारों ने गाँव को मुनाफे कमाने का क्षेत्र बना लिया। गाँव के किसानों की जमीन हड़पकर कारखाने बनवाकर लाभ कमाने की मंशा को पूरा करने में लगे रहे। गाँव में किसान और खेती नही ंतो उसे गाँव नहीं कहते। पर अधिक खर्च कर फसल लगाने और फसल तैयार होने पर सही कीमत न मिलने के कारण किसानों को मजबूरन कर्ज लेने और जमीन तक खो देने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है। आज भारत चहुमुखी परिवर्तन और बहुमुखी विकास नामक जुमला की दौड़ में शामिल है। प्रेमचंद के समय किसान मजदूर बनते नजर आते हैं। आज भूमंडलीकृत समय में किसान आत्महत्या करते नजर आ रहे हैं। भारतीय संस्कृति की आधारभूत जड़े ग्रामीण संस्कृति में ही समाहित रहती थी। परिवर्तन और आधुनिकता की लहर ने आज गंवई संस्कृति को झकझोर दिया है। वर्तमान समय में लोग उपभोक्तावादी संस्कृति के माया–मोह में फंस गये हैं। लोगों के मन में उदारता, सहिष्णुता, ईमानदारी, त्याग, परोपकार के स्थान पर कपटता, स्वार्थ, भ्रष्टाचार, नीतिहीनता का भाव बड़े पैमाने पर बढ़ गया है। शहरी संस्कृति ने जिस तरह मानवीय संवेदनाओं को विकृत किया है, उसका असर गाँववालों तक फैल चुका है। पाश्चात्यकरण की नीति ने भारतीय संस्कृति को अपसंस्कृति में बदल डाला है, और शहरों की तरह गाँवों के अंदर की रिश्तों की गरमाहट को कम कर दिया है। डॉ विवेकी राय जी लिखते है – ष्गाँव में बैर–विरोध, हिंसा, बिखराव, वैमनस्य, अराजकता, तनाव और अलगाव ऐसा बढ़ा है कि सही अर्थों में वह जंगल हो गया है। मनुष्य जंगली जानवरों की भाँति एक–दूसरे पर घात लगाए और गुमसुम गुर्राते हुए ऐसे मरे–मरे जीते हैं कि उनके भीतर देश, समाज, नैतिकता, मानवता, और यहाँ तक कि आनन्द, उल्लास तथा सहकार–सहयोग की सुखभागिता के लिए भी कोई कोना बचा नहीं होता है।”[1] आज गाँव इस तरह बदल गया है कि गाँव की अपनी जान–पहचान सिर्फ स्मृति ही रह जाती है।

भूमंडलीकरण ने लोगों के चाल–चलन, वेश–भूषा, रहन–सहन, जीवन–शैली से लेकर भाषा एवं संस्कृति को भी बदल डाला है। विज्ञान और

तकनीक ने एक ओर मानव को सुविधाभोगी बनाया तो दूसरी ओर परंपरागत मूल्यों और आदर्शों पर प्रश्नचिह्न भी लगा दिया। डॉ वासुदेव शर्मा लिखते हैं – विज्ञान ने व्यक्ति को बहुमुखी बनाया तो शिक्षा ने उसे बौद्धिक किया और ज्यों–ज्यों बौद्धिकता तीव्रतर होती गई त्यों–त्यों व्यक्ति की भवात्मकता मरती गई और उसके जीवन में दिशाहीनता, स्वार्थता, अजनबीपन की मनःस्थिति ला दी।''[2] किसान वैश्वीकरण की तथाकथित विकास की नीतियों के कारण भयानक संकट के दौर से गुजर रहे हैं। खेती–किसानी करना अब सिर्फ उन लोगों या समुदायों के लिए है जो अन्य कोई कार्य नही कर सकते। वे साधनहीन और विपन्न हैं, आज किसान भी अपनी संतानों को खेती–किसानी के काम में नहीं लगाना चाहता। आज सबकुछ बाजार द्वारा संचालित हो रहा है और बाजार को सट्टा बाजार संचालित कर रहा है। इसलिए किसानों के बीच भी मुनाफा कमाने के लिए और बाजार के अनुरूप खेती करने व पैदावार बढ़ाने के लिए कर्ज लेकर खेती करने का खतरनाक खेल चल रहा है। और बाजार किसान की उपज के साथ खिलवाड़ कर रहा है। किसान आत्म–हत्या यों ही नहीं कर रहा है, स्वाधीन भारत, जो आज चमक रहा है, विश्वशक्ति बन रहा है, किसान फसल बर्बाद हो जाने के कारण, उपज का उचित मूल्य न मिलने के कारण और कर्ज न चुका पाने के कारण आत्महत्या कर रहा है। समकालीन हिंदी साहित्य में गाँव के बदलते रूप हमारे सामने आते हैं।

भूमंडलीकरण के इस दौर में इंसान सबकुछ भूलकर पैसे के पीछे भागे जा रहें हैं। इस पैसे कमाने के दौर मे बहुत कुछ पीछे छूट रहें हैं। गाँव भी हासिए पर धकेल दिए जा रहे हैं। फिर भी कुछ लोग है जो अपने गाँव से, अपनी मिट्टी से आत्मीयता रखते हैं। भूमंडलीकरण ने आदमी को वस्तु और संवेदनहीन बना दिया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने दुलहिन कहानी में शहर से बिलकुल अनजान अपरिचित लड़की, शादी के बाद पति के साथ गाँव छोड़कर जा रही है, तब उसके मन में जो विचार उठते हैं, इसकी झलक हमें इस कहानी में देखने को मिलती है– ''गाँव की लड़की सुषमा अपनी शादी के दिन पहली बार चप्पले पहनती है, तब वह सोचती है– ''चप्पल पहनकर चलना उसे बहुत अजीब सा लग रहा था। धरती को पाँव छू ही नहीं रहे थे। धूल का सुभाव कैसा है, कुछ पता ही नही लग रहा है, दिल्ली में तो सुनते है कि धूल–मिट्टी होती ही नही, तब कैसे जीते होंगे यहाँ के लोग? धान, गेहूँ कहाँ बोते होंगे? पता नही आम, महुआ के पेड़ वहाँ होंगे या नही? सुषमा बिना धूल मिट्टी जीने के बारे में सोंच भी नहीं सकती थी। उसके लिए अपनी मिट्टी–धूल सब महत्व रखते हैं। ऐसे में दिल्ली जैसे महानगर में वह कैसे जी पाएगी यह प्रश्न उसे झकझोर रहा है। अपने गाँव की मिट्टी के प्रति उसकी आत्मीयता इन शब्दों मे जाहिर होती है–''बस दूर–दूर तक सिर्फ मकान, ऊँची–ऊँची इमारतें, सड़कें बसें, कारें स्कूटर, भर्र–भर्र, भों–भों, पीं–पीं हुआ...यहाँ खेत किधर होंगें? और बगीचे ? ये जो पेड़–पालो दिखाई पड़ रहें हैं, इनमें आम महुआ के पेड़ जरूर होंगें।[4] यह सुषमा का अपने गाँव के प्रति लगाव का प्रतीक है। शहर पहुँचने पर वह गाँव की याद में रोती है। दूसरी ओर ऐसे भी व्यक्ति हैं जो शहर में कमाने आए हैं और गाँव वापस जाना नहीं चाहता। मैत्रिय पुष्पा की सेंध नामक कहानी में हम कई ऐसे लोगों को देखते हैं जिन्हे पेट की खातिर गाँव छोड़ना पड़ता है। चकबंदी में खेत हाथ से निकल जाने पर गाँव के संभ्रांत लोग शहर में मजदूर बनकर जीवन बिताने के लिए बाध्य होते हैं। मैत्रिय पुष्पा भी 'सेंध' कहानी में एक विवश किसान की कथा जनसमक्ष के सामने लाती हैं। शहर में गगां सिंह से कलावती की भेंट होती है और उसके पूछने पर गंगा सिंह कहता है– ''पेट की खातिर मजदूरी करनी पड़ती है, और देश गाँव को छोड़ना पड़ता है।''[5] गंगा सिंह गाँव के ठाकुर हैं, कभी भी गाँव में मजदूरी नहीं किया। गाँव का काश्तकार था। हल की मूठ ही पकड़ता था। सात पुश्तों से किसी के यहाँ मजदर्री नहीं किया। गाँव मे जाकर मजदूरी करने पर बाप–दादों की नाक कट जाती। इन बातों से गंगा सिंह जैसे साधारण किसान की मजबूरी सामने आती है। एक किसान को अपने खानदान की इज्जत बरकरार रखने की इस भावना को हम इस कहानी में पाते हैं। गंगा सिंह वर्षां से खेती–बारी छोड़ने के कारण परेशान है। खेती छोड़कर मजदूरी करके जीवन बिताना उसकी मजबूरी है। सरकारी अफसरो के भ्रष्टाचार ने गंगा सिंह से उसकी जमीन छीन ली थी। कलावती ने रिश्वत देकर अपनी जमीन के बदले गंगा सिंह की जमीन पर चक बनाने के लिए अफसर को मजबूर किया था। सब कुछ जानते हुए भी गगां सिंह कलावती से कोई द्वेष नहीं रखता है। वह कलावती के पति जोगी चौधरी के एहसानों के प्रति कृतज्ञ है, इस कहानी में गाँव के किसानों का दूसरों के प्रति स्नेह, दया, आत्मीयता आदि का भाव गंगा के माध्यम से व्यक्त होता है। मिथिलेश्वर ने 'वे जब गाँव आये' कहानी के माध्यम से दिखाया है कि वैज्ञानिक प्रगति का लाभ आज भी आम किसानों को नहीं मिलता है। 'वे जब गाँव आये' कहानी में गाँव का एक साधारण किसान गाँव आए हुए लेखक के सामने सच लाने का प्रयास करता है''– इस बीसवीं शताब्दी में भी बातें और वैज्ञानिक प्रयोग चाँद को छू रहें हैं, हम ग्रामवासी अपने खेतों के पानी के लिए ईश्वर के आसरे ही रहते हैं, क्योंकि सड़क बनने की तरह नहर आने की योजना भी हमें एक पहेली ही लगती है। बाढ़ के पानी को पोखर में बंद कर और कुएँ से पानी निकालकर हम खेतों का पटवन करते है। लेकिन तब हमारा संघर्ष चूक जाता है जब सूखे की एक हल्की छाया भी हमारे गाँव के ऊपर मंड़राने लगती है। हम हाथ पर हाथ रखकर अपनी जलती हुई फसलों को देखने के सिवाय कुछ भी नही कर पाते हैं।''[6]

गाँव में भी शहर की हवा चल पड़ी है पहले गाँव के लोगों में दूसरों के प्रति आत्मीयता थी लेकिन अब गाँव के लोगों की मानसिकता भी बदल गई है, इसका भी जिक्र कथाकार करता है–''इतनी तेजी से गाँवों मे बदलाव आये हैं, अरे भाई साहब, अब यहाँ किसी की गलती देखने और एक दूसरे के प्रति ढाये जा रहे अन्याय के खिलाफ बोलने की हिम्मत किसी में नहीं रह गई है। ठीक आपके शहर की तरह, जिस तरह बगल में छूरा घोपने वाले व्यक्ति को कोई नही रोक पाता। सड़क चलती रहती है और सड़क के किनारे बेरहमी से किसी

की हत्या की जा रही होती है, उसी तरह गाँवों में भी आदमी सब कुछ देखने और सहने के अभ्यस्त हो गये हैं।''[7] इस कहानी में बदलते गाँव के चेहरे को हम देखते है। समय ने किसानों के जीवन को भी बहुत बदल दिया है, किसान का पढ़ा लिखा बेटा आज सब्जी नहीं फुलवारी लगाना पसंद करता है। 'अपनी अपनी जगह' कहानी में नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के सोंच में जो अंतर है मिथिलेश्वर दिखाते हैं। बूढ़ा किसान जो सब्जी की खेती बाड़ी करता था और अपने बेटे को पढ़ाकर रेलवे का अफसर बना देता है। बूढ़ा किसान बेटे के साथ रेलवे क्वाटर्स में रहने को मजबूर है। किसान क्वाटर्स के आस–पास की खाली जमीन में सब्जियाँ उगाना चाहता है पर बेटे को फूल लगाना पसंद है। बूढ़ा किसान बेटे की हरकतों से नाराज होकर कहता है– ''चार दिन के छोकड़े नौकरी और रुतबा पाते ही अपने को बुद्धिमान समझने लगते हैं। भला इनको कौन बताए कि फूलों की सुगंध से सब्जियों की सुगंध का महत्व लाख गुना अधिक होता है। हरी–हरी, प्यारी–प्यारी सब्जियाँ कितनी अच्छी लगती हैं देखने में भी, सूँघने में भी, खाने में भी, सब्जियों की खेती करके ही इस बाबू साहब को मैने इस ओहदे तक पहुँचाया है। लेकिन अब मेम के साथ इन्हें सब्जियों की गधं अच्छी नही लगती है। सब्जियाँ सस्ती हैं, कहते हैं पैसे की कोई कमी नही।''[8] इस कहानी में किसान को अपनी खेती–बाड़ी के प्रति जो आत्मीयता का भाव है, वह उसके बेटे में नहीं, बेटा उपभोगतावादी संस्कृति के चंगुल में फँस कर खेती की एहमियत से अनभिज्ञ है। बूढ़ा किसान अपने बेटे के आचरण से दुखित होकर वाचक से यों कहता है– ''अगर मैं जानता कि मेरा लड़का पढ़–लिखकर धरती की इज्जत नही करेगा, तब मैं इसे कभी नहीं पढ़ाता, बचपन से ही सब्जियाँ लगाने की कला सिखाता, आज अपने क्वाटर्र की जितनी जमीन है उसमें सब्जियों की खेती कर किसी भी परिवार को पाला जा सकता है।''[9] दशवें दशक के महान कथाकार संजीव ने 'जसी बहू' कहानी में अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए गाँव से शहर की ओर जाकर मजदूरी करने वालों की कथा को उजागर करते हैं। 'जसी बहू' में एक विवश स्त्री के संघर्ष की कथा है। उसका पति काम के वास्ते कलकत्ता गया है। जसी बहू की परेशानी को कहानी में यों व्यक्त किया गया है– ''गन्ने के मौसम में रस के लिए तांतों से बचने की दृष्टि से उसने गन्ने की खेती की आफत मोल ली। एक तो चकबंदी का मामला, ऊपर से सिंचाई की चिंता, चिट्ठियाँ डाल, डालकर हार गई, जसी नही आया... खुद ही उसे गाँव में पड़ाव डाले चकबंदी के दफ्तरों के चक्कर लगाने पड़े।''[10] चकबंदी और सिंचाई की समस्या को हल करने के लिए जसी बहू दौड़–धूप करती है फिर भी उसे सफलता नही मिलती। औद्योगिकरण किस तरह से किसान को मजदूर और मजदूर को अंत में मुजरिम बना रहा है। इसका चित्रण लोक बाबू की 'मुजरिम' में दिखाई देता है। औद्योगिकरण ने किसानों की दशा को सोचनीय कर दिया है। किसान जमीन से बेदखल हो रहें हैं और विकास के नाम पर सरकार पूँजीपतियों की दलाली करती नजर आ रही है। औद्योगिकरण के चलते किसान की सोचनीय दशा का जिक्र कथाकार इस प्रकार करता है– ''खेती की जमीन पर खड़े ये उद्योग किसानों को मजदूरों में और मजदूरों को मजबूरों में तब्दील करने के उद्योग भी बन गये हैं।''[11]

फूलझर गाँव के किसान ललित की जमीन विकास के नाम पर उद्योगपतियों के हाथ पहुँचती है, परिणाम स्वरूप उसे मजदूर बनना पड़ता है और बीमारी एवं गरीबी में उसे अपने बच्चों का 'घातक' बनाता है। पूँजीवादी उद्योगपति अपनी स्वार्थसाधना हेतु गाँव को उजाड़ने का कार्य कर रहे हैं।

वे कल–कारखाने लगाकर लाभ कमाना चाहते हैं। इसके लिए उन्हें जो जमीन चाहिए उसका अधिग्रहण होता ही है। वे किसानों से, उनके बेरोजगार बेटों को काम देने का झूठा वादा करके उनकी जमीन छीन लेते हैं। और किसान को भिखारी या आत्महत्या करने पर मजबूर कर देते हैं। इसमें सत्ता पक्ष की भूमिका दलाल की होती है। सरकार पूँजीपतियों को करोड़ों रूपये कर्ज, कर में छूट देती है पर किसानों के लिए कुछ नहीं। कैलाश बनबासी की कहानी 'एक गाँव फुलझर' में औद्योगिकरण किस तरह गाँव को निगल रहा है या गाँव को गायब कर रहा है देखा जा सकता है, उद्योगपति छत्रशाल गुप्ता ने सरपंच और उसके समर्थक किसानों के बेटों को फैक्टरी में नौकरी देने का वादा किया है। इसलिए वे गाँव के लोगों को, गाँववालों को इस तरह समझा रहे हैं– ''तुम लोग यार सच में एकदम गँवार हो, थोड़ी सी जमीन जाने का हमें इतना बड़ा लाभ मिल रहा है तो जमीन को जाने दो, क्या करना है गाय–गोरू तो कहीं और जाकर चर लेंगें। ये सोचो, तुम्हारे बेरोजगार लड़कों को काम मिलेगा। इससे तरक्की होगी, हमारा गाँव खुशहाल गाँव बनेगा।''[12] औद्योगीकरण गाँव में तरक्की लाएगा और इस तरह गाँव में खुशहाली होगी, उद्योगपतियों के बिचौलिए ऐसी बाते फैलाते हैं। गाँव के लोग इस बहकावे में आकर उन्हे अपनी जमीन औने–पौने दाम में बेचने के लिए तैयार होते हैं। विकास योजनाओं के नाम पर किसान को खेती छोड़कर मजदूर बनना पड़ता है। फुलझर गाँव शहर से लगा हुआ एक छोटा सा गाँव है। वहाँ के किसानों की हालत का बयान यों किया गया है– ''आजकल के हालात में वे मजदूर ज्यादा हैं क्योंकि किसानी एक मँहगा सौदा हो गया है, जुआ का दाँव। ऊपरवाले ने पानी नहीं बरसाया तो सबकुछ चौपट, इससे बचे तो खरपतवार और कीटकों का प्रकोप, फिर भी गाँव के किसान यहाँ दाँव खेलते हैं, जैसे परम्परा निभा रहें हैं। अषाढ़–सावन में खेतीबारी संभालते हैं और अगहन–पूस में मजदूर हो जाते हैं।''[13] औद्योगीकरण और शहरीकरण की चकाचौंध ने ग्रामीण संस्कृति को उजारकर रख दिया है।आज गाँव का अस्तित्व नष्ट होते दिखाई पड़ रहें हैं। गाँव का किसान, किसान न होकर शहर में मजदूर बन गया है और शहर में काम करने वाले बाबू लोग गाँव को नजर अंदाज कर रहें हैं। विश्वग्राम की परिकल्पना ने गाँव के इतिहास के साथ भूगोल को भी बदल दिया है। मिथिलेश्वर की 'वे जब गाँव आये' शीर्षक कहानी में इसे देखा जा सकता है– ''अब शहर की वे तमाम उपरिया चीजें गाँवों में भी

आ गई हैं, जैसे सिगरेट, शराब, चाय, पान, हिप्पीकट बाल, बेलबॉटम पैंट, नाभि दर्शना साड़ियाँ, मिनी स्कर्ट, छूरेबाजी और चलती–फिरती प्रेम कहानियाँ, असल में मैं यह बात आपसे छुपाना नहीं चाहता हूँ कि हमने शहर की सिर्फ नकल की है।''[14] हमारे मन मं गाँव का जो आदर्श रूप है, आज वह कल्पना मात्र रह गया है। आज का गाँव पुराने अर्थ वाले गाँव नहीं रहा हैं, उसका रूप–रंग बदल गया है।

निष्कर्ष

आज उदारीकरण के दौर में विश्वग्राम की परिकल्पना की आड़ मे गाँव के अस्मिता और पहचान नष्ट होती जा रही है। जो गाँव पहले धार्मिक सहिष्णुता और भाईचारे से भरपूर था, आज वह आपसी बैर एवं द्वेष का अखारा बन गया है। वर्तमान भूमंडलीकृत चक्र में ग्रामीण परिवेश जिन विसंगतियों से, समस्याओं से गुजर रहा है, उसका सजीव चित्रण ही इस शोध पत्र में किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. विवेकी राय, जगत तपोवन सो कियो – पेज–32*
2. *डॉ. वासुदेव शर्मा, साठोत्तर हिंदी कहानी : मूल्यों की तलाश, पेज–62*
3. *अब्दुल बिस्मिल्लाह, दुलहिन, रफ.रफ मेल,– पेज–84–85*
4. *अब्दुल बिस्मिल्लाह, दुलहिन, रफ.रफ मेल, पेज– 86–87*
5. *सेंध – ललमनिया, मैत्रिय पुष्पा, पेज–36*
6. *वे जब गाँव आये – दूसरा महाभारत, मिथिलेश्वर, पेज–89*
7. *वे जब गाँव आये – दूसरा महाभारत, मिथिलेश्वर, पेज–95*
8. *अपनी–अपनी जगह, दूसरा महाभारत, मिथिलेश्वर, पेज– 57–58*
9. *अपनी–अपनी जगह, दूसरा महाभारत, मिथिलेश्वर, पेज–60*
10. *जसी बहू, आप यहाँ है – संजीव, पेज–11*
11. *मुजरिम लोकबाबू, पहल 88, मार्च–अप्रैल 2008, पेज–151*
12. *एक गाँव फुलझार – बाजार में रामधन, कैलाश बनवासी, पेज–114*
13. *एक गाँव फुलझार – बाजार में रामधन, कैलाश बनवासी, पेज –112*
14. *वे जब गाँव आए – दूसरा महाभारत, मिथिलेश्वर, पेज–94*